Knowledge Consortium of Gujarat
Department of Higher Education - Government of Gujarat
Journal of Humanity
ISSN: 2279-0233
Continuous issue-22 |January – March 2016

भारतीय वैष्णव-भक्ति

वैदिक भक्ति की पयस्विनी महाभारत काल तक आते-आते विस्तृत होने लगी।"..महाभारत के शांति-पर्व के नारायणी उपाख्यान में श्वेत द्वीप का उल्लेख किया जाता है जहाँ वैष्णव-भक्ति का विवेचन है। विष्णु-नारायण-वासुदेव का मिलन वैष्णव धर्म को नई गति देता है, जिसे भागवत धर्म कहा गया।"[१] वैष्णव भक्ति की भागवत धारा का विकास इसी काल में हुआ। भागवत धर्म के इस रूप के उदय का काल लगभग 1400 ई.पू. है। तब से लेकर लगभग छठी सातवीं शताब्दी तक यह अविच्छिन्न रूप से चलता रहा। इस बीच भारतीय मनीषा का एक ऐसा विराट व्यक्तित्व उपस्थित होता है जिसे आदि शंकराचार्य कहते हैं। उन्होंने वैष्णवाचार्यों को प्रस्थानत्रयी पर नई व्याख्याएँ प्रस्तुत करने के लिए उत्तेजित किया। इस प्रकार वैष्णव चिंतन को प्रकारांतर से गति मिली। भागवत को 'चतुर्थ प्रस्थान' तथा भक्ति का 'प्रस्थान ग्रंथ' कहा गया। वैष्णव आचार्यों ने इस पर भाष्य लिखते हुए नई व्याख्याएँ कीं और उनके नाम पर दार्शनिक संप्रदाय बने। जैसे-रामानुचार्य द्वारा विशिष्टाद्वैत पर आधारित श्री सम्प्रदाय, जिसे ब्रह्म संप्रदाय भी कहते हैं।

मध्वाचार्य ने विष्णु को महत्व दिया। इनकी परंपरा में चैतन्य महाप्रभु आते हैं जिन्होंने बंगाल, पूर्वांचल से वृंदावन तक की वैष्णव भक्ति को प्रभावित किया। निम्बार्क द्वैताद्वैत के समर्थक थे, जिससे कृष्ण-भक्ति को विशेष गति प्राप्त हुई। क्योंकि वे श्रीकृष्ण को पर ब्रह्म मानते हैं तथा राधा-कृष्ण की कल्पना से कृष्ण-लीला में नई सक्रियता आई। जब कि भागवत में तो राधा अनुपस्थित हैं।

समर्पण अथवा शरणागति भाव में भक्ति-ज्ञान का संयोजन वैष्णव-भक्ति चिंतन की विशिष्ट उपलब्धि है और वैष्णव धर्म इस चिंतन से एक नया प्रस्थान प्राप्त करता है।

रामानंद संप्रदाय के स्थापक रामानुजाचार्य के श्री संप्रदाय में दीक्षित थे। इन्होंने विष्णु के अन्य अवतारों की अपेक्षा राम की उपासना पर अधिक बल दिया और उत्तरी भारत में भक्ति आंदोलन को गति दी थी। डॉ.गणपतिचंद्र गुप्त के मतानुसार-"कहा जाता है कि कबीर, रैदास, पीपा, सेन, धन्ना आदि संत इन्हीं के शिष्य थे। यद्यपि इन संतों नें आगे चलकर सगुण वैष्णव-भक्ति के स्थान पर निर्गुण भक्ति को अधिक महत्व दिया तथा अवतार वाद की उपेक्षा की, किन्तु फिर भी वैष्णव धर्म और वैष्णव भक्तों पर उनकी आस्था सदा बनी रही।"[२]

कबीर ने जैसी श्रद्धा वैष्णव के प्रति व्यक्त की है, वैसी ही उन्होंने अपने युग के अन्य किसी संप्रदाय के प्रति नहीं व्यक्त की है।

हिंदी के कृष्ण-भक्ति-साहित्य के विकास में डॉ.पी.जयराम के मतानुसार-"...आलवार साहित्य द्वारा प्रतिपादित वैष्णव-भक्ति की उत्कट रागमूलकता अथवा प्रेम-तत्त्व एवम् उपासना-प्रधानता का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा।"[3] श्री कल्याण सिंह शेखावत का भी मानना है कि "15वीं और 16वीं शताब्दी में उत्तर भारत में वैष्णव भक्ति संप्रदायों की बाढ़-सी आ गई थी। वल्लभ संप्रदाय, निम्बार्क संप्रदाय, चैतन्य संप्रदाय, हरिदासी संप्रदाय, राधास्वामी आदि संप्रदायों ने इस युग की कृष्ण भक्ति पर अपना पर्याप्त प्रभाव डाला।"[४] यही कारण है कि अधिकांश विद्वानों ने "मीराँ को माधुर्य भाव की सगुणोपासक वैष्णव भक्त"[५] माना है।

इन सभी सम्प्रदायों ने अद्वैतवाद, माया वाद तथा कर्म-संन्यास का खण्डन कर भगवान की सगुण उपासना का प्रचार किया। यह भी ध्यान देने की बात है कि इस रागात्मिका भक्ति के प्रवर्तक सभी आचार्य सुदूर दक्षिण देश में ही प्रकट हुए। मध्ययुगीन भक्ति की उत्पत्ति और विकास का इतिहास भागवतपुराण के माहात्म्य में इस प्रकार से दिया हुआ है-

उत्पन्ना द्राविडे साहं वृद्धि कर्णाटके गता।
क्वचित् क्वचिन् महाराष्ट्रे गुर्जरे जीर्णतां गता।।
तत्र धोरकलेर्योगात् पाखण्डै: खण्डितांगका।
दुर्बलाहं चिरं जाता पुत्राभ्यां सह मन्दताम्।।
वृन्दावनं पुन: प्राप्य नवीनेव सुरूपिणी।
जाताहं युवती सम्यक् श्रेष्ठरूपा तु साम्प्रतम्।।[६]

"मैं वही (जो मूलत: यादवों की एक शाखा के वंशज सात्वतों द्वारा लाई गई थी) द्रविड़ प्रदेश में (रागात्मक भक्ति के रूप में) उत्पन्न हुई। कर्नाटक में बड़ी हुई। महाराष्ट्र में पोषण हुआ। गुजरात में वृद्धा हो गई। वहाँ घोर कलियुग (म्लेच्छ आक्रमण) के सम्पर्क से पाखण्डों द्वारा खण्डित अंगवाली मैं दुर्बल होकर बहुत दिनों तक पुत्रों (ज्ञान-वैराग्य) के साथ मन्दता को प्राप्त हो गई। फिर वृन्दावन (कृष्ण की लीलाभूमि) पहुँचकर सम्प्रति नवीना, सुरूपिणी, युवती और सम्यक् प्रकार से सुन्दर हो गई।"

इसमें संदेह नहीं कि मध्ययुगीन रागात्मिका भक्ति का उदय तमिल प्रदेश में हुआ। परन्तु उसके पूर्ण संस्कृत रूप का विकास भागवत धर्म के मूल स्थल वृन्दावन में ही हुआ, जिसको दक्षिण के कई संत आचार्यों ने अपनी उपासना भूमि बनाया।

नामदेव मराठी के पहले कवि हैं। वात्सल्य, करुणा और भक्ति रस उनकी कविता में प्रचूर रूप में प्रकट हुए हैं। अपनी पीड़ा, दीनता, विवशता का आर्त स्वर में प्रकटीकरण करते हुए 'विट्ठल' से भक्ति का वरदान माँगते हैं। ये महाराष्ट्र में भागवत धर्म के अग्रणी प्रचारक थे। उत्तर भारत के संतों को प्रभावित करने वाले ये एकमात्र मराठी संत हैं। नामदेव भारतीय भाषाओं में सहिष्णुता और भावात्मक एकता उत्पन्न करने वाले पहले मराठी के हिंदी सेवी कवि थे। सर्व धर्म समभाव रखने वाली उदार और मानवीय मूल्यों से

ओतप्रोत वैष्णव भक्ति को जन सामान्य में प्रचार-प्रसार करने वाले जन कवियों में नामदेव शीर्षस्थ कवि थे।

चंद्रकांत बांदिवडेकर के मतानुसार- "नामदेव ज्ञानेश्वर की तरह ज्ञानी भक्त नहीं थे। वे भक्ति का प्रचार करने वाले भावुक भक्त थे। उनके पदों में भक्त की व्याकुलता, पीड़ा, प्रतीक्षारतता, आतुरता व्यक्त हुई है। भगवान के प्रति वे इतने समर्पित थे कि उन्हें सर्व 'विट्ठल' ही नजर आता था।"[७]

ये वारकरी पंथ के थे। इसमें विष्णु और महादेव एक ही भगवान के रूप हैं। ये कहते हैं-

जब जाऊँ तब बीठल भेला।
बीठलियाँ राजाराम देवा।।
आऊँ तो बीठल जाऊँ तो बीठल।
बीठल व्यापक माया।।
नामाका चित्त हरिसूं लागा।
ताथें परम पद पाया।।

नामदेव ने भक्ति का अधिकार सब के लिए प्रदान किया जो वारकरी पंथ की एक महत्वपूर्ण विशेषता है।

बंगाल के वैष्णव कवियों को संत- सिद्धों की भाषा की परंपरा प्राप्त थी। "ब्रजबुली' वैष्णव परिवेश में उदित एक विशिष्ट शैली ही है। यह भी बोलियों के मिश्रण पर आधारित है। मुस्लिम युग में वैष्णव परिव्राजकों के लिए मथुरा- वृंदावन सबसे बड़े तीर्थ बन गए। दक्षिण के आचार्य भी इधर आए और चैतन्य महाप्रभु भी। वैष्णव साधु समाज की जो भाषा बनी उसका नाम ब्रजबुलि है। इसके विकास में मुख्य रुप से ब्रजी और मैथिली का योगदान था। गौण रूप से अन्य भाषाएँ भी योग दे रही थीं। विद्यापति के राधाकृष्ण प्रेम संबंधी गीतों ने बंगाल में वैष्णव- नवजागरण को रस- स्नात कर दिया

बिहार में नान्यदेव (1017 ई.) के कर्णाटकी राजवंश की स्थापना के कारण भागवत् धर्म की प्रतिष्ठा ग्यारहवीं शताब्दी में ही हो गयी थी। बाद में ओनवाल वंश भी वैष्णव धर्म का समर्थक रहा था। "बंगाल में नव द्वीप और उड़ीसा में नीलाद्रि (जगन्नाथपुरी) वैष्णव धर्म के दो मुख्य केन्द्र रहे हैं। नवद्वीप में वैष्णव-भावना का प्रवेश सेन वंश (1019-1200 ई.) के द्वारा संपन्न हुआ था और अंतिम राजा लक्ष्मण सेन के समय में ही जयदेव ने अपने गीत गोविन्द के द्वारा भक्ति आंदोलन में एक क्रांति उपस्थित कर दी थी। यही वह प्रदेश है जहाँ बौद्धों का संश्लेषण वैष्णवों के साथ हुआ था। जगन्नाथ का मंदिर शुरूआत में बौद्ध मंदिर ही था और कुछ दिनों तक वज्रयानियों का भी उस पर आधिपत्य रहा। दसवीं शताब्दी में वह वैष्णवों के अधिकार में आ गया था। भुवनेश्वर के मंदिर (1050-1150 ई.) वैष्णव धर्मोत्थान के प्रतीक हैं।"[८]

तमिल के वैष्णव आलवार भक्तों में दक्षिण में 12 वैष्णव संत लोकप्रिय थे। इनकी विष्णु के साथ पूजा होती है। इनकी मूर्तियाँ दक्षिण के मंदिरों में स्थापित मिलती हैं। इनके पदों का संपादन सर्वप्रथम

आचार्य नाथ मुनि ने किया था। जिनका समय नवीं सदी माना जाता है। इन संग्रहों के नाम 'दिव्य प्रबंधम्' या 'प्रबंधम्' हैं। भक्ति आंदोलन का आदि ग्रंथ 'प्रबंधम्' ही माना जाता है।

ये बारह आलवार ई.स. की तीसरी से नवीं सदी तक के बीच हुए थे। वैष्णव धर्म के बारह आलवार हैं-पोइगै (सरायोगी) 2.पूदत्तालचार (भूतयोगी) 3.पेयालवार (पिशाचयोगी) 4.तिरुमलिशै (भक्तिसार) 5.तिरुप्पन आलवार 6.टोंडरडिप्पडि 7.तिरुमंगै (परकाल) 8.कुलशेखर 9.पेरियालवार (विष्णुचित्त) 10.आंडाल (गोदादेवी) 11.नम्मालवार (पंरांकुश) और 12.मधुरकवि।

डॉ.प्रेमशंकर के मतानुसार-"भक्ति-प्रवाह को गति देने में आलवारों की भूमिका अधिक प्रभावी है। यहाँ वर्ण-जाति, पांडित्य, कर्मकाण्ड के बंधन टूटते हैं और बिना किसी मध्यस्थ के उपास्य को संबोधित किया गया है। इस दृष्टि से आलवारों की भूमिका ऐतिहासिक है।"[९] तमिल के बाद कन्नड एवम् महाराष्ट्र में लगभग एक साथ ही भक्ति का उद्घोष होता है। यहाँ आकर वैष्णव भक्ति के विकास में विठोबा नाम जुड़ जाता है। विट्ठल तो मूलतः कर्नाटक की कल्पना है, ऐसा डॉ.भण्डारकर का मत है।[१०] कन्नड के समकालीन ही महाराष्ट्र का भक्ति आंदोलन है, जिसका प्रमुख केन्द्र भीमा नदी के किनारे बसा पंढरपुर है। भीमा नदी ही कर्नाटक और महाराष्ट्र के बीच सीमा का कार्य करती है। दोनों की भक्ति का आश्रय विठोबा हैं परंतु स्थानीय कारणों से यहाँ वैष्णव-भक्ति के साथ एक नया घटक जुड़ गया है। यह घटक नाथ-संप्रदाय का प्रभाव है।[११]

तेलुगु मध्यकालीन साहित्य को प्रबंध युग भी कहा जाता है, इसको स्वर्णयुग भी माना जाता है। इस युग के कृष्णदेवराय के राजदरबार में अष्ट दिग्गज (आठ कवि) थे। जिनमें से तीसरे कवि रामभद्र (रामाभ्युदयम्) वैष्णव भक्त थे। इनकी तुलना तुलसीदास से की जाती है। डॉ.रामछबीला त्रिपाठी के शब्दों में-"वैष्णव भक्ति में इनका अपार योगदान है। उनका 'रामाभ्युदयम्' रामभक्ति का महत्वपूर्ण ग्रंथ है।"[१२]

पिंगलि सूरना तेलुगु के एक सर्वाधिक प्रतिभाशाली कवि माने जाते हैं। उनमें काव्य-प्रतिभा और भावाभिव्यक्ति की विलक्षण क्षमता थी। उनके द्वारा रचित 'कलापूर्णोदय' सभी प्रकार से आदर्श कृति है। उनकी दूसरी रचना 'प्रभावती पद्युम्नम्' है। उनके द्वारा रचित 'राघव पांडवीयम्' एक द्विर्थक काव्य है, जिसमें रामायण तथा महाभारत की कथाएँ वर्णित हैं। ये वैष्णव भक्त कवि थे।

तेलुगु भाषा में भी वैष्णव भक्ति साहित्य की रचना हुई है किन्तु तमिल जितनी नहीं। वैष्णव भक्त कवियों में भक्त शिरोमणि पोतन्ना का नाम सर्वोपरि है। पोतन्ना के पहले नन्नय, अर्राप्रगडा, तिक्कना-कवित्रय ने राज्याश्रय में रहकर महाभारत का तेलुगु में अनुवाद किया था किन्तु उसे भक्तिकाव्य नहीं कहा जा सकता। पोतन्ना ने बोपदेव कृत भागवत का अनुवाद किया, जिसमें श्रीकृष्ण की विविध लीलाओं का वर्णन विस्तारपूर्वक हुआ है। तुलसीदास की तरह पोतन्ना की भक्ति दास्य भाव की थी।

आँध्रप्रदेश की भक्त कवयित्रियों में मोलाम्बा का नाम अत्यंत आदर से लिया जाता है। आंध्र में वैष्णव भक्ति में विष्णु के रामावतार का अधिक प्रचलन है। मोलाम्बा ने भी राम को ही अपना आराध्य माना है। उनकी तुलना मीराँबाई से की जाती है।

रामदास भी एक रामोपासक भक्त रहे हैं। उन्होंने 'दाशरथिशतक' नाम से एक मुक्त काव्य लिखा था। रामभक्ति के उपासकों में रामदास का नाम उल्लेखनीय है। आँध्र में त्यागराज नामक प्रसिद्ध भक्त कवि हुए थे जिन्होंने सोलहवीं शताब्दी में बहुत उच्च कोटि की भक्ति विषयक रचनाएँ की थीं।

आँध्र में वैष्णव भक्ति की जो धारा प्रवाहित रही उसके आराध्य के रूप में रामचंद्र और श्रीकृष्ण दोनों को स्वीकार किया गया। यही कारण है कि "तेलुगु साहित्य के अनेक कवियों ने महाभारत, श्रीमद्भागवत आदि का अनुवाद प्रस्तुत कर श्रीकृष्ण की लीलाओं का विस्तार से वर्णन किया है। आँध्र प्रदेश में कृष्णमचार्य का नाम भी वैष्णव कवि के रूप में प्रसिद्ध है। तेलुगु के कवि तिम्मना ने तो 'हरिवंश पुराण' को आधार बनाकर कृष्ण-रुक्मिणी, उषा-अनिरुद्ध प्रसंग और पद्युम्नचरित को विशेष रूप से वर्ण्य विषय बनाया।"[१३]

मध्यकालीन नव्य वैष्णव आंदोलन के प्रवर्तक शंकरदेव असम के थे। उन्होंने अपनी रचनाएँ ब्रजावली में प्रस्तुत की हैं जिसमें उन्होंने 6 काव्य और 2 नाटकों की रचना की है। उनके समकालीन माधवदेव ने ब्रजावली में कृष्ण-भक्ति-विषय 11 गेय रचनाएँ प्रस्तुत की हैं।[१४]

पंजाबी में गुरु नानक ने सिख संप्रदाय की स्थापना कर भक्ति की गंगा बहायी थी। सिंध के तुलसीदास अथवा गोस्वामी लालजी ने १६२६ वि. में गोस्वामी विट्ठलनाथजी का शिष्यत्व स्वीकार किया। अंततः गुसांईजी ने उसे अपना "लाल' ही माना और गोस्वामी पद से भी विभूषित किया। इनको कार्य दिया गया, सिंध और पंजाब में वैष्णव धर्म का प्रचार था। सिंध-तट पर डेरागाजीखां को इन्होंने अपना साधना-स्थल बनाया। इसी केन्द्र से वैष्णव धर्म का प्रचार ब्रजभाषा में आरंभ हुआ। लालजी ब्रजभाषा के मर्मज्ञ थे।

गुजरात में वैष्णव-भक्ति परंपरा बहुत पहले से प्रचलित थी। जिसके पुनरुत्थान का श्रेय वल्लभाचार्य तथा उनके पुत्र विट्ठलनाथ जी को जाता है। गुजरात में वैष्णव कवियों की परंपरा भालण से शुरू होती है। इन्होंने ब्रजभाषा में रचना की थी। इनकी एक ब्रज रचना देखने योग्य है-

व्रज को सुख समरत स्याम।
पर्नकुटी सौ बिसरत नाहीं न भावत सुंदर धाम।।
बदीर मात्र नवनीत के कारण उखले बाँधे ते बहु दाम।
चित्त में जु चुभी रही है, चोर-चोर करत हैं नाम।।

भालण के बाद पाटण निवासी केशवदास कायस्थ का गुजराती ग्रंथ 'कृष्ण-लीला-काव्य' वैष्णव-भक्ति का ही ग्रंथ है। गुजराती के सुप्रसिद्ध कवि नरसिंह मेहता का यह पद-

वैष्णव जन तो तेने रे कहीए जे पीड पराई जाणे रे,
पर दुःखे उपकार करे ने मन अभिमान न आणे रे.-वैष्णव.1
सकळ लोकमां सहुने वंदे निंदा न करे केनी रे,
वाच-काछ मन निश्चल राखे धन्य धन्य जननी तेनी रे. -वैष्णव.2
समदृष्टि ने तृष्णा त्यागी, परस्त्री जेने मात रे,
जीहवा थकी असत्य न बोले पर धन न झाले हाथ रे.-वैष्णव.3
मोहमाया व्यापे नहीं तेने दृढ वैराग्य तेना मनमां रे,
रामनाम-शुं ताळी लागी, सकळ तीरथ तेना तनमां रे.-वैष्णव.4
वणलोभी ने कपटरहित छे काम क्रोध जेणे मार्यां रे,
भणे नरसैयोःतेनुं दर्शन करतां कुळ एकोतेर तार्यां रे.-वैष्णव.5[१५]

(सच्चा वैष्णव वह है जो दूसरों का दुख दूर करें। दूसरों की पीड़ा दूर करने में सहायता करें फिर भी जिसके मन में अभिमान न आये वह वैष्णव। सभी के साथ जो नम्रता से पेश आये, किसी की निंदा न करे, जिसकी वाणी और जननेन्द्रिय संयमित हो, सभी के प्रति समभाव रखे, परायी स्त्री जिसके लिए माता समान हो, कभी भी असत्य न बोले, पराये घन की जो कामना न करे, जो मोह माया से दूर रहे, जिसके मन में दृढ वैराग्य की भावना कायम हो, जिसके शरीर में ही सारे तीर्थस्थल हो, जिसके मन में लोभ और कपट की वृत्ति न हो, काम और क्रोध को जिसने नष्ट कर दिये हों, ऐसे वैष्णव जन के दर्शन से तो इकहत्तर कुलों का उद्धार हो जाता है।)

गाँधीजी का प्रिय भजन था। इनके अतिरिक्त बैजु बावरा, कृष्णदास अधिकारी, मीराँबाई भी गुजरात के वैष्णव-भक्त कवियों की परंपरा में आते हैं। मीराँ तो कृष्ण की दीवानी थी। इनके पदों में भक्ति और विरह की भावना कूट-कूट कर भरी पड़ी है। जैसे-

बोल मा बोल मा बोल मा रे, राधाकिसन विना बीजुं बोल मा।
साकर शेरडीनो स्वाद तजीने, कडवो लींबडो घोल मा रे।।
चांदा सूरजनुं तेज तजीने, आगिया संगाथे प्रीत जोड मा रे।।
हीरा माणेक झवेर तजीने, कथीर संगाथे मणि तोल मा रे।।
मीरां कहे प्रभु गिरधर नागर, शरीर आप्युं समतोलमां रे।। राधा.।।[१६]

(राधा-कृष्ण के सिवा और कुछ मत बोलिये। मिसरी और गन्ने के स्वाद को छोड़कर कड़वा नीम मत घोलिये। चाँद और सूर्य के प्रकाश को छोड़कर जुगनू के प्रकाश के साथ प्रेम न करिये। हीरे-माणिक और जवाहरात को छोड़कर राँगा चिपकाई हुई मणियों को मत तौलिये। मीराँ कहती हैं, हे गिरिधर नागर, मैंने अपना शरीर समतोल में अर्पित किया है-घाटे का सौदा नहीं किया है।)

दयाराम तो गुजराती सुप्रसिद्ध कवि हैं जिन्होंने ब्रज में 41 ग्रंथों की रचना की। ये कृष्ण के अनन्य भक्त तथा पुष्टिमार्गी थे।

गुजराती कवियों में भालण, नरसिंह मेहता, केशवराम, मीराँ, बैजु, कृष्णदास और दयाराम मुख्य हैं।

इसीलिए कहा जा सकता है कि "हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने का और इसे अमर साहित्य देने का जो श्रेय वैष्णव धर्म को है, वह अन्य किसी भी समाज को नहीं।"[१७]

पादटीप एवं सन्दर्भ ग्रन्थसूची

1. भक्ति काव्य का समाज-दर्शन, पृ.50
2. हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, भाग-2, पृ.143
3. भक्ति के आयाम, पृ.708
4. मीराँबाई ग्रंथावली,पृ.88
5. हिंदी रसामृत सिन्धु, सं. डॉ. विजयेन्द्र स्नातक,पृ.2
6. श्रीमद्भागवत माहात्म्य, अध्याय-1, श्लोक-48 से 50
7. मराठी साहित्य परिदृश्य, पृ. 209
8. हिंदी साहित्य का आधा इतिहास, सुमन राजे, पृ.129
9. भक्ति का समाज-दर्शन,पृ.52
10. न. चि. जोगलेकर, हिंदी एवम् मराठी के वैष्णव साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन, प.73
11. हिंदी साहित्य का आधा इतिहास, सुमन राजे, पृ.128
12. भारतीय साहित्य,पृ.118
13. वही.पृ.119
14. मध्यकालीन हिंदी साहित्य-अध्ययन और अन्वेषण, अंबाशंकर नागर,पृ.68
15. नरसिंह महेतानी उत्तम पदावलि-संपा.मनसुखलाल सावलिया,पृ.190-191
16. मध्यकालीन हिंदी साहित्य-अध्ययन और अन्वेषण, अंबाशंकर नागर,पृ.187
17. आचार्य किशोरीदास वाजपेयी ग्रंथावली, संपादक-विष्णुदत्त राकेश,पृ107

****

डॉ. उत्तम पटेल
अध्यक्ष, हिंदी विभाग,
श्री वनराज आर्टस एण्ड कॉमर्स कॉलेज, धरमपुर, जि.वलसाड-396050

Copyright © 2012- 2016 KCG. All Rights Reserved. | Powered By : Knowledge Consortium of Gujarat